विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १५, मंगलवार, तारीख २६-८-१९८०
वचनामृत- ३२१, ३२३, ३२९ प्रवचन-१९

वचनामृत-३२१। मुद्दे की बात यहाँ तो, भाई! बहिन अन्दर में अनुभव में से असंख्य अरब वर्षों का तो जातिस्मरण (ज्ञान) है। वह कौन है, साधारण प्राणी पहचान सके ऐसा नहीं है। मुर्दे जैसा लगे। असंख्य अरबों वर्षों का जातिस्मरण। नौ भव। अनुभूति, सम्यग्दर्शन और आनन्द का स्वाद (आया है), उसमें से यह वाणी निकली है। कोई बार बोले होंगे, उसमें से लिखा है। इसमें अतिश्योक्ति से कुछ नहीं (कहा) है, हों! आहाहा!

बहिन की वाणी में यह आया, **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! परपदार्थ पर दृष्टि रखने से, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव पर दृष्टि रखने से भी समकित तो नहीं होता। उनकी वाणी पर लक्ष्य रखने से भी समकित नहीं होता। आहाहा! उनकी वाणी निमित्त और अपने में ज्ञान होने की लायकता से ज्ञान हुआ हो, उससे भी समकित नहीं होता। आहाहा! गजब बात, प्रभु! अन्तर की द्रव्य की दृष्टि जो पर्याय, उस पर्याय पर दृष्टि रहने से चैतन्य प्रगट नहीं होता। निर्मल पर्याय प्रगट होती हो, उस पर भी दृष्टि रखने से नहीं होता। आहाहा! नियमसार में ५०वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा, प्रभु! तेरी पर्याय को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ५०वीं गाथा। जगत प्राणी कुछ भी मानो या कुछ भी स्वच्छन्द करो, परन्तु अन्तर भगवान द्रव्य, गुण और पर्याय ये तीन पर, पर्याय पर दृष्टि देने से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। जिसमें अनन्त-अनन्त विभूति भरी है। जिसमें अनन्त-अनन्त समृद्धि की सम्पदा पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा, **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** आहाहा! भाषा संक्षेप में है, परन्तु... आहा..! इसमें मान-अपमान का कुछ नहीं है। हम ऐसा कहे और आप ऐसा कहते हो। बापू! प्रभु! ऐसा कुछ नहीं है। मार्ग तो यह है। हम व्यवहार से कहते हैं, पर्याय से कहते हैं, आप हमें ना कहकर झूठा

ठहराते हो। बापू! आपको झूठा नहीं ठहराते। प्रभु! मार्ग तो यह है। भगवन्त! माफ करना, तुझे दूसरी तरह से दुःख लगे तो। आहाहा! दूसरा क्या कहें?

पद्मनन्दि आचार्य महाराज भी ऐसा बोले,.. आहाहा! उसमें उतना लिखा है, ब्रह्मचर्य का २६वाँ अध्याय लिखा। लिखने के बाद कहते हैं, हे युवानों! शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह ब्रह्मचर्य नहीं है। काया से विषय न लेना, वह कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! मन से विकल्प उठता है कि मैं ब्रह्मचर्य पालूँ। वह भी कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। आहाहा! आचार्य महाराज पद्मनन्दि प्रभु ऐसा कहते हैं,.. आहाहा! प्रभु! द्रव्यदृष्टि... तेरी दृष्टि शास्त्र में जाए तो भी व्यभिचारी है, प्रभु! आहाहा! गजब बात! लोगों को कठिन लगे।

उज्जैनवाले आये थे। एक बार कहा था। उज्जैनवाले सेठ नहीं थे? पण्डित। सत्येन्द्र, उज्जैन का पण्डित है न? आये थे। उसे कहा था, बापू! यह है, भाई! वीतराग के शास्त्र पर दृष्टि करने से, प्रभु! मुनि पंच महाव्रतधारी एकावतारी, केवलज्ञान के पथिक ऐसा फरमाते हैं, पर ऊपर राग करने से तो राग ही होता है। पर के आश्रय से धर्म बिल्कुल होता नहीं। आहाहा! यह बात, प्रभु! क्या करें? यह वीतराग सर्वज्ञदेव की बात, भाव, दिगम्बर में रह गया है। बाकी कोई सम्प्रदाय में यह बात है नहीं। स्थानकवासी और श्वेताम्बर जैन नहीं है। वे जैन नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमल स्पष्ट लिखते हैं, स्थानकवासी और श्वेताम्बर अन्यमति हैं, जैन नहीं हैं। अर..र..र..! क्योंकि उसमें यह वाणी सुनने मिलती नहीं। उसमें है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि, **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,...** ओहो..! प्रभु! द्रव्य में तो अनन्त सामर्थ्य है। केवलज्ञानी परमात्मा ने तो प्रत्यक्ष देखा है। सम्यग्दर्शन में भी वह अचिन्त्य चमत्कार अन्दर में होता है। वेदन थोड़ा, वेदन थोड़ा है, परन्तु अन्तर की अनन्त चमत्कृति सम्यग्दर्शन में भी चैतन्य का चमत्कार भास में आता है। आहाहा! ऐसी बात है, पाटनजी! अरे..! प्रभु! कितनों को दुःख लगे कि हमको.. बापू! प्रभु! तेरे आत्मा को शान्ति मिले। भगवान होओ, यहाँ तो सब प्रभु बन जाओ। मार्ग दूसरा है। आहाहा! बाकी तो सब भगवान हो जाओ। परन्तु इस रास्ते भगवान होंगे, दूसरे रास्ते से नहीं होंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,...** द्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा।

त्रिकाली सनातन सत्य, त्रिकाली अनादि-अनन्त सत्, ऐसा प्रभु, उसमें तो अनन्त सामर्थ्य भरा है। आहाहा! **उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।** बहुत संक्षेप में कहा बहिन ने। द्रव्य पर दृष्टि लगा दो। बाकी सब बातें हैं, कुछ भी हो। आहाहा! १३वीं गाथा में तो वहाँ तक कहा कि नय, निक्षेप, प्रमाण से आत्मा का विचार करना, परन्तु वह भी अभूतार्थ है। आहाहा! १३वीं गाथा में कहा है। समयसार। समयसार 'ग्रंथाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।' 'ग्रंथाधिराज तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।' एक-एक पद में, एक-एक गाथा में। यहाँ तो बहिन स्वयं अनुभव से कहते हैं। आहाहा! **द्रव्य पर दृष्टि लगाओ।**

निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! सिद्ध भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! कठिन लगे, लोगों को एकान्त लगे, प्रभु! क्या हो? भगवान का विरह हुआ, प्रभु वहाँ रह गये। सीमन्धर भगवान तो महाविदेह में रह गये। आहाहा! उनका विरह हुआ। पीछे यह बात रह गयी। कितने ही लोगों को यह अतिश्योक्ति का एकान्त है, ऐसा लगता है। प्रभु! ऐसा नहीं है। प्रभु! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान वहाँ कह रहे हैं। प्रभु! आहाहा! बहिन को तो ध्यान में आने पर, आँख खुलने के बाद कोई बार ऐसा भी लगता है, मैं भरत में हूँ कि महाविदेह में हूँ, भूल जाते हैं। कौन माने? आहाहा! ऐसे देखो तो मुर्दे। ऐसे खड़े रहे। आहाहा! भाई! शरीर की स्थिति कोई भी हो, मन की स्थिति कोई भी हो। आहाहा! भाई! शरीर की स्थिति कोई भी हो, मन की स्थिति कोई भी हो। आहाहा! वाणी की स्थिति कोई भी हो, भगवान तो मन, वाणी, देह से पार है अन्दर में। आहाहा! पर्याय से भी पार है। मन, वचन, काया से तो पार है... आहाहा! पर्याय से भी पार है। कहा न?

निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। शुद्ध दृष्टि का सिद्ध भी विषय नहीं है। आहाहा! **साधकदशा भी...** मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, ज्ञायकभाव का आनन्द का अनुभव हुआ और साधकदशा प्रगट हुई और साधक से सिद्ध तो अवश्य होनेवाले हैं। दूज उगी है तो पूर्णिमा होगी है। ऐसे अपने में अपना अनुभव जहाँ हुआ तो अल्प काल में केवलज्ञान तो होगा ही। परन्तु यहाँ कहते हैं कि **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा! जिस भाव से निश्चित होता है कि मैं अल्प काल में सिद्ध होऊँगा। वह दशा भी दृष्टि का विषय नहीं। साधकदशा, मोक्ष का मार्ग निश्चय, स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन—ज्ञान हुआ, चारित्र हुआ, वह भी दृष्टि

का विषय नहीं। आहाहा! प्रभु! कठिन लगे, परन्तु रास्ता तो तेरे घर में है न, नाथ! प्रभु! तू जितना बड़ा है, उसकी बात करते हैं। तूने चाहे जैसा माना हो, परन्तु तेरी महत्ता का तो पार नहीं है। सर्वज्ञ भी...

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचार मात्र रहा वह ज्ञान जब॥
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा॥

सिद्धपद कब आयेगा? सिद्धदशा की झंखना। आहा..! श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में थे। स्त्री, परिवार, पुत्र-पुत्री थे। हजारों का, लाखों का जोहरी का व्यापार था। परन्तु अन्दर में से नारियल में जैसे गोला भिन्न रहता है, श्रीफल-गोला। सूखा गोला जैसे भिन्न रहता है, वैसे ये देह में भिन्न रहते हैं, प्रभु! ऐसा आत्मा अन्दर भगवान पूर्णानन्द की सम्पदा से भरा पड़ा (है)।

साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। आहा! अर्थात् क्या कहा? मूल स्वभाव जो त्रिकाल है, उसमें साधकदशा भी, दृष्टि का विषय मूल स्वभाव में नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश। आहा..! **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत...** विषयभूत क्या? **मूल स्वभाव में नहीं है।** त्रिकाली स्वभाव में साधकदशा नहीं है। त्रिकाली स्वभाव, मूल स्वभाव भगवान स्वभाव, ध्रुव आनन्दस्वभाव में साधकदशा का अभाव है। क्योंकि साधकदशा तो पर्याय है। आहाहा! वह साधकदशा भी ध्रुव पर ऊपर-ऊपर तैरती है। आहाहा! जिसका मूल स्वभाव में प्रवेश नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! कठिन लगे या कुछ भी लगे, दूसरी बात आसान लगे और यह बात कठिन लगे, परन्तु मार्ग तो प्रभु यह है। दूसरा तो कोई मार्ग है नहीं। 'एक होय त्रण काणमां परमार्थनो पंथ' आहाहा! परमार्थ का पंथ तो सिद्धदशा पाने को, जिसमें सिद्धदशा भी नहीं है। आहाहा! सिद्धदशा पाने को, जिसमें सिद्धदशा भी नहीं है, ऐसी द्रव्यदृष्टि से साधकपना प्रगट होता है और उसके आश्रय से सिद्धदशा उत्पन्न होती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, प्रभु! चाहे जिस प्रकार से बाहर से बात करे, परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा!

१४२-१४३ गाथा में वहाँ तक लिया है, प्रभु नयातिक्रान्त है। विकल्पवाला नय, हों! विकल्पवाला नय से नयातिक्रान्त है। आहा..! जो नय है, वह भी दृष्टि का विषय नहीं। आहाहा! नय तो ज्ञान का अंश है और भगवान तो अनन्त सम्पदा से भरा पड़ा भगवान है। आहाहा! यह कहते हैं, **द्रव्यदृष्टि करने से ही...** वस्तु की दृष्टि करने से ही। 'ही'। एक ही बात। कथंचित् साधक दूसरा और कथंचित् दूसरा मार्ग, ऐसा कुछ नहीं। कोई कहते हैं न (कि) कथंचित् व्यवहार मार्ग भी है। व्यवहार है सही, व्यवहार है सही, व्यवहारनय है तो विषय है सही, परन्तु उससे आत्मा का लाभ हो, ऐसा किंचित् भी नहीं है। आहाहा! दो नय का विषय तो अनादि-अनन्त है। पर्याय है न! पर्याय, व्यवहारनय का विषय है। हो, परन्तु उसका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहा! आश्रय करने लायक तो त्रिकाली भगवान (है)।

शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। आहाहा! क्या कहा? ३२१ है न? **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** शुद्ध पर्याय सिद्ध की है, वह प्रगट होती है, उससे आगे जा नहीं सकता। पर्याय में उससे आगे जा नहीं सकता। द्रव्य तो है, वह है। द्रव्य तो अनन्त-अनन्त सम्पदा से भरपूर (है)। तो भी सिद्धदशा के आगे बढ़ जाता है, ऐसा नहीं है। सिद्धदशा प्रगट हुई, सो हुई। उससे विशेष द्रव्य में बहुत भरा है तो सिद्धदशा से आगे कुछ विशेष आनन्द आयेगा, ऐसा है नहीं। आहाहा!

अरे..! कितनों को तो ऐसा लगे, यह क्या है? बापू! प्रभु के वचन यह है। आहा..! भगवान! सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उनके यह वचन हैं। महाविदेह से बहिन आयी हैं। आहाहा! वहाँ से आने के बाद छोटी उम्र से वहाँ के संस्कार याद आते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, कि **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** यह क्या कहते हैं? द्रव्य में अनन्त सम्पदा और अनन्त-अनन्त शक्ति एवं सामर्थ्य है। फिर सिद्धदशा के बाद भी आगे बढ़ते जाते हैं या नहीं? सिद्धदशा होने के बाद भी आनन्द और सुख बढ़ता है या नहीं? नहीं। बस, पूर्ण हो गया। सिद्धदशा पूर्ण हो गयी। उससे आगे बढ़ते नहीं। द्रव्य परिपूर्ण पड़ा है। उस समय भी द्रव्य तो परिपूर्ण पड़ा है। फिर भी उसके बाद आगे नहीं बढ़ता। आहाहा! **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी...** आहाहा! क्या कहते हैं? राग और पुण्य, दया, मैं जगत का उद्धार करूँ, वह विकल्प तो है ही नहीं, परन्तु जो सिद्धदशा

प्रगट हुई, उससे भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पर्याय में उससे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पूर्णानन्द का नाथ जहाँ पर्याय में पूर्णरूप से प्रगट हुआ, पर्यायरूप से; द्रव्य तो द्रव्य है। फिर सिद्धदशा से आगे बढ़ना, द्रव्य में बहुत भरा है तो सिद्ध से भी आगे शुद्धता बढ़ती जाती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! शब्द ऐसा है न।

द्रव्यदृष्टि में मात्र... आहाहा! वस्तु त्रिकाली भगवान, चारों ओर से चिन्ता को छोड़ दे। भगवान परमात्मा पूर्ण पड़ा है, उस पर दृष्टि लगा दे। जहाँ नय, निक्षेप और प्रमाण भी, आचार्य कलश में कहते हैं (कि) वहाँ नय, निक्षेप और प्रमाण तो दिखते नहीं, आहाहा! परनतु हम अनुभव करते हैं, ऐसा भी दिखता नहीं। अनुभव करते हैं। आहाहा! परन्तु उसे देखने के लिये वहाँ रुकते नहीं। आहाहा! याद कर-करके वहाँ रुकना, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! बात तो सूक्ष्म है। थोड़े शब्द में इतना है।

द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है। द्रव्यदृष्टि में। कोई ऐसा कहे कि द्रव्यदृष्टि से सिद्धपद की निर्मल पर्याय से भी बढ़ जाएगा, ऐसा है नहीं। **द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है।** द्रव्यदृष्टि से मात्र। पर्याय भी नहीं। आश्रय लेनेवाली तो पर्याय है। उसकी दृष्टि है, वह तो पर्याय है। परन्तु वह पर्याय, **द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य...** जो त्रिकाल भगवान; विशेष भी नहीं। विशेष तो निर्णय करता है। विशेष तो अनुभव करता है। विशेष बिना तो सामान्य होता नहीं। आहाहा! सामान्य और विशेष, दो तो उसका त्रिकाल स्वभाव है। सामान्य-विशेष बिना होता नहीं; विशेष, सामान्य बिना होता नहीं। दोनों चीज़ वस्तु की चीज़ है। भगवान ने बनायी है, इसलिए कहा है, ऐसा है नहीं। ऐसी वस्तु अनादि से अकारणरूप थी। छहढाला में आता है, यह चौदह ब्रह्माण्ड अकारणरूप है, किसी ने बनाया नहीं। ऐसे ही सत् अनादि से (है)। आहाहा!

उसमें **द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है।** सब छोड़कर... आहाहा! एक द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार है। पर्याय का भी स्वीकार नहीं। वह तो ठीक कहा, परन्तु आत्मा में इतनी सम्पदा है, अनन्त-अनन्त, तो सिद्धपर्याय से भी कोई विशेष पर्याय होगी कि नहीं? प्रभु! बस! सिद्धपर्याय फिर बढ़े, वह तीन काल में बढ़ती नहीं। देखो! यह बहिन के वचन! सिद्धदशा के बाद भले पूर्णानन्द का नाथ अनन्त आनन्द और अनन्त

शान्ति पड़ी है, परन्तु सिद्धदशा के बाद शुद्धि बढ़े, ऐसा है नहीं। पूर्ण शुद्धि हो गयी। आहाहा! ३२१ हुआ न? बाद में कौन-सा है? ३२३। लिख लिया है?

जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता। वह परिणति में विभाव से दूर भागता है। जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनों के बीच खड़ा हुआ मनुष्य अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है, उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो, जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है॥३२३॥

३२३। **जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो,...** आहाहा! जिसने सम्यग्दर्शन में, शुरुआत के सम्यग्ज्ञान में आत्मा का स्वाद चख लिया... आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ का... ध्रुव का स्वाद नहीं, हों! स्वाद तो पर्याय में आता है। आहाहा! ध्रुव पर दृष्टि पड़ती है तो दृष्टि में स्वाद आता है, ध्रुव में नहीं। प्रवचनसार, १७२ गाथा में तो वहाँ तक कहा, कि वेदन आया, वही मैं तो आत्मा हूँ। ध्रुव-ब्रुव का हमें क्या काम? १७२ गाथा। २०वाँ बोल है। प्रवचनसार। मुझे तो प्रत्यभिज्ञान (अर्थात्) जो (कल) था, वही आज है, ऐसे द्रव्य के आलिंगन बिना, द्रव्य के आलिंगन बिना, द्रव्य के स्पर्श बिना.. आहाहा! २०वाँ बोल है। मुझे तो वेदन होता है, वही मैं आत्मा हूँ। आहाहा! कहो, एक ओर द्रव्य का माहात्म्य, एक ओर कहे कि वेदन है, वही मैं आत्मा हूँ। मुझे तो वेदन में आया, वह आत्मा हूँ। भले आया ध्रुव में से। परन्तु आया वेदन। आहाहा! १७२ में है। प्रवचनसार।

मुमुक्षु :- पर्याय को आत्मा कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय को ही आत्मा कहा। सच्ची बात। यही मैं हूँ। यहाँ है प्रवचनसार? प्रवचनसार नहीं होगा। है? यह है? हाँ, प्रवचनसार (है)। १७२ गाथा क्या कहते हैं? देखो!

लिंग अर्थात्... लिंग अर्थात् यहाँ गुजराती है। **प्रत्यभिज्ञान का कारण...** प्रत्यभिज्ञान का कारण अर्थात् कल था, वह यह है, यह है, यह है। यह.. यह.. यह.. त्रिकाल ध्रुव रहेगा। **प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य...** अर्थात् पदार्थ के

ज्ञान का सामान्यपना जो त्रिकाली। वह **जिसके नहीं है...** आहाहा! इतना दृष्टि का जोर द्रव्य में और यहाँ कहे कि द्रव्य नहीं है। मैं द्रव्य को छूता नहीं। मुझे तो आनन्द का वेदन आता है, वह मैं हूँ। देखो! **वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार 'आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित'...** आहाहा! प्रभु! उसकी वेदन की जो पर्याय है, वह पर्याय द्रव्य को आलिंगन करती नहीं। आहाहा! गजब बात है, भाई! पाठ है न? देखो! २०वाँ बोल।

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य... द्रव्य, वह **जिसके नहीं है...** द्रव्य जिसे नहीं है। आहाहा! एक ओर द्रव्य की बात, एक ओर कहे, द्रव्य नहीं है। किस अपेक्षा से? **वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार 'आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित ऐसी शुद्ध पर्याय है' ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** अलिंगग्रहण में से ऐसा अर्थ निकलता है। अलिंगग्रहण। लिंग अर्थात् सामान्य द्रव्य, उसके स्पर्श बिना पर्याय जो होती है, वह मैं हूँ। आहाहा! २०वाँ बोल है, प्रवचनसार। सबका वाँचन हो गया है, व्याख्यान हो गया है। चार महीने में हुए हैं। मुम्बई से छपेंगे। आहाहा!

शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। वह नहीं। ३२३। **जिसने शान्ति का स्वाद चख लिया हो, उसे राग नहीं पुसाता।** आहाहा! जिसने अन्तर भगवान शान्ति का स्वाद जितना आया, द्रव्यस्वभाव का पर्याय में अनुभव आया, उसको.. आहाहा! राग नहीं सुहाता। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का राग हो, चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, वह राग नहीं सुहाता। आहाहा! राग सुखरूप नहीं लगता। आहा..! राग आता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक साधक को राग आता है, परन्तु राग सुहाता नहीं। आहाहा! ऐसी बात। आहा..!

वह परिणति में... उसकी परिणति में—साधकजीव की परिणति में, **विभाव से दूर भागता है।** आहाहा! भगवान आत्मा की परिणति जहाँ हुई, अवस्था, निर्मल आनन्द की जहाँ दशा हुई, आहा..! वह विभाव से दूर भागता है। विभाव की ओर जाता ही नहीं। उसका ज्ञान हो जाता है, परन्तु विभाव की ओर उसका उपयोग भी नहीं जाता है। आहाहा! फिर भी विभाव का ज्ञान होता है। उपयोग न होय तो भी ज्ञान का स्वभाव उस समय अपने को और पर को जानने का पर्याय का स्वभाव है तो स्व-पर प्रकाशक ज्ञान होता है। उपयोग न रखे तो भी। अपना स्वभाव है स्व-परप्रकाशक पर्याय। आहाहा! **विभाव से दूर भागता है।**

जैसे एक ओर बर्फ का ढेर हो... एक ओर बर्फ का ढ़ेर (पड़ा हो) **और दूसरी ओर अग्नि हो तो उन दोनों के बीच खड़ा हुआ...** दोनों के बीच खड़ा हुआ **मनुष्य अग्नि से दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,...** झुकता है। आहाहा! अग्नि और बर्फ दो तरफ हों। बीच में खड़ा है। तो अग्नि से दूर भागता है, बर्फ की ओर ढलता है। वैसे भगवान साधकदशा... आहाहा! एक ओर निर्मल दशा है, एक ओर निर्मल दशा का बर्फ का ढ़ेर है, एक ओर राग का विकल्प है। दोनों के बीच खड़ा है। आहाहा! साधक चौथे, पाँचवें, छठे में। आहाहा! तो भी, अग्नि और बर्फ के बीच खड़ा हुआ (मनुष्य) अग्नि से हटकर बर्फ की ओर जाता है। वैसे भगवान आत्मा आत्मा के सम्यग्दर्शन में ज्ञान का स्वाद आया, वहाँ राग आता है, पूर्ण वीतराग नहीं है तो, वह राग अग्नि समान है। वहाँ से भागकर आत्मा की शान्ति की ओर आता है। आहाहा! दृष्टान्त देकर... (सरल किया है)। **दूर भागता हुआ बर्फ की ओर ढलता है,...**

उसी प्रकार जिसने थोड़ा भी सुख का स्वाद चखा हो,... सम्यग्दर्शन में-अनुभूति में थोड़ा ही (स्वाद आया है)। चौथे गुणस्थान में अनुभूति में भी आत्मा के आनन्द का स्वाद थोड़ा चखा है। आहा..! स्वाद चखा है। **जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है,...** जिसे थोड़ी भी शान्ति का वेदन वर्त रहा है। **ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है...** राग को दाह कहा है न? राग आग दाह दहै सदा। छहढाला में है। राग आग दाह दहै सदा। यहाँ राग से धर्मी (दूर) भागता है, कहते हैं। भागने का अर्थ (यह कि) उसका प्रयत्न-वृत्ति आत्मा की ओर है। द्रव्य की ओर झुकता है। है राग, आता है। वीतराग न हो, तब तक आता है। राग न हो साधक को (ऐसा नहीं है)। साधक है, वहाँ बाधक आता है। मिथ्यादृष्टि पूर्ण दुःखी, पूर्ण विकारी। सिद्ध पूर्ण सुखी, पूर्ण निर्विकारी। आहाहा! साधक आनन्द और राग-दुःख दोनों में है। पूर्ण आनन्द नहीं, इतना राग है परन्तु राग की ओर नहीं झुकता। पुरुषार्थ शान्ति की ओर, स्वभाव की ओर, द्रव्य की ओर ढलता है। आहाहा! ऐसा मार्ग समझना मुश्किल पड़े।

दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है। शीतलता की ओर ढलता है। अपना भगवान शीतलता, शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. जिसमें आकुलता का, गुण-गुणी भेद के विकल्प की आकुलता भी नहीं। गुण-गुणी भेद का

विकल्प और गुण एवं यह पर्याय, ऐसा लक्ष होता है तो विकल्प आता है। वह विकल्प भी अशान्ति है। प्रभु में शान्ति प्रगट हुई है तो शान्ति की ओर झुकता है। शान्ति की ओर झुकता है। साधक का झुकाव शान्ति की ओर है। साधक का झुकाव राग की ओर नहीं है। फिर भी राग आता है। फिर भी राग का ज्ञान करते हैं, ऐसा कहने में आता है। वास्तव में तो वह ज्ञान का ज्ञान करता है। ज्ञान का वही स्वभाव है। राग आया, इसलिए राग का ज्ञान हुआ — ऐसा नहीं। वह ज्ञान का स्वभाव उस समय का इतना है कि अपने को जाने और राग को जाने। राग की अस्ति है, इसलिए ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! दोनों का ज्ञान उसी समय प्रगट होने का स्वत: कर्ता, कर्म, करण षट्कारक से परिणति उत्पन्न होती है। आहाहा! साधक को शान्ति का, समकित का थोड़ा अनुभव हुआ, उसमें जो पर्याय षट्कारकरूप परिणमति है, उसके कर्ता का लक्ष्य स्वद्रव्य की पर झुकता है। राग आता है, परन्तु उस ओर झुकता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पहले तो समझ करनी मुश्किल पड़े। आहाहा! और यह किये बिना प्रभु! किसी भी प्रकार से जन्म-मरण का अन्त आये, ऐसा नहीं है। जन्म और मरण का अन्त... आहाहा! भले एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय में माँ-बाप नहीं होते, फिर भी जन्म तो है न! मनुष्य और तिर्यंच में जन्म में माँ-बाप होते हैं। देव में माँ-बाप होते नहीं परन्तु जन्म तो है न। नारकी में माँ-बाप होते नहीं, परन्तु जन्म तो है न। नारकी में माँ-बाप नहीं है, परन्तु जन्म तो होता है न। एकेन्द्रिय में माँ-बाप नहीं है, फिर भी जन्म तो होता है न। आहाहा! ये जन्म-मरण का दु:ख, उससे ज्ञानी भागते हैं। आहाहा! अन्तर में शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. उसकी ओर का झुकाव। आहाहा!

एक आता है, प्रवचनसार। भगवान की स्तुति में... '**एवं खु णाणिणो सारं**' हमारे गुरु कहते थे, परन्तु उल्टा कहते थे। '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम।**' किसी भी प्राणी का घात नहीं करना, वह बात करते थे। ऐसा अर्थ नहीं है। '**एवं खु णाणिणो सारं**' ज्ञान का सार वह है कि '**जं न हिंसइ किंचणम**'। राग का अंश करके भी आत्मा की हिंसा होती है, वह नहीं करते। आहाहा! '**एवं खु**' '**एवं खु**' अर्थात् निश्चय। '**णाणिणो सारं**' हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। शान्त थे, बहुत कषाय मन्द, ब्रह्मचारी थे। परन्तु दृष्टि में बिल्कुल विपरीतता। इसका ऐसा अर्थ करते थे। शान्ति से करते थे, हों! उद्धत नहीं। परन्तु यह वस्तु नहीं मिली। '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम**'

किसी का घात नहीं करना। आहाहा! '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम, अहिंसा समयं चेव**' समय अर्थात् सिद्धान्त का सार, पर को घात नहीं करना, यह सिद्धान्त का सार है। अहिंसा। ऐसा कहते थे। '**अहिंसा समयं चेव एयावत्त वियाणिया**' पर की थोड़ी भी हिंसा न करनी, यह अहिंसा पूरे सिद्धान्त का सार है। यह जाना, उसने सब जान लिया। आहाहा! ऐसा है नहीं।

यहाँ तो '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम**' राग के अंश की उत्पत्ति नहीं करते। आहाहा! '**एवं खु णाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम,...** आहाहा! **अहिंसा समयं चेव**' राग की अनुत्पत्ति और शान्ति की उत्पत्ति, वह अहिंसा। यह समय का— सिद्धान्त का सार है। '**अहिंसा समयं चेव**' अहिंसा, यह अहिंसा, हों! पर की छहकाय की अहिंसा कहते हैं, परन्तु छह काय में प्रभु! तू है या नहीं? छह काय की हिंसा नहीं करना। परन्तु छह काय में तू है या नहीं? तो तेरी हिंसा नहीं करना, उसका अर्थ क्या? आहाहा! '**समयं चेव**' राग की उत्पत्ति नहीं करना और अरागी आत्मदशा उत्पन्न करना, यह समस्त सिद्धान्त का सार है। निर्मल दशा उत्पन्न करनी सार है। दृष्टि का विषय क्या, यह तो उसमें नहीं है। पर्याय की व्याख्या है। आहाहा!

'**एयावत्त वियाणिया**' जिसने इतना जाना, उसने सब जाना, ऐसा कहते थे। पर एकेन्द्रिय जीव, हरितकाय को भी न मारना, उसने सब जाना। ऐसा यहाँ है नहीं। किसी की हिंसा आत्मा कर सकता नहीं। किसी की दया पाल सकता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! तेरी अहिंसा—राग की अनुत्पत्ति, वह तेरी अहिंसा। राग की उत्पत्ति, वह तेरी हिंसा। आहाहा! यह मार्ग है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धि में रखा है कि पर की दया का भाव... पाठ है, हिंसा है। ऐसा पाठ है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। पर की दया का भाव, हिंसा है। क्योंकि पर ओर के लक्ष्य में राग आया। राग में आत्मा के स्वभाव का घात हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु :- कोई दया नहीं करेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कौन करता है? कर ही नहीं सकता। सेठाई नहीं कर सकता। वहाँ दुकान पर सेठाई करते हैं न सब? आहाहा! वह नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। भैया! तू कर सकता है तो राग-द्वेष अथवा मिथ्यात्व अथवा सम्यक् अथवा वीतरागता।

इसके अलावा कुछ नहीं कर सकता। कठिन पड़े जगत को, परन्तु सत्य तो यह है। यहाँ वही कहा है न। आहा..!

शान्ति का वेदन वर्त रहा है, ऐसा ज्ञानी जीव दाह से अर्थात् राग से दूर भागता है एवं शीतलता की ओर ढलता है। आहाहा! ३२३ पूरा हुआ न? अब कौन-सा है? ३२९।

मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं। उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है, वचनातीत है। वहाँ शून्यता नहीं है, जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है। तू वहाँ जा, तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे॥३२९॥

३२९। तुम्हारी भाषा क्या है? तीन सौ उनतीस। आहाहा! **मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।** यह मुनि। पंच महाव्रत पालते हैं, समिति, गुप्ति पालते हैं, शिष्य बनाते हैं, संघ की रक्षा करते हैं, (ऐसा नहीं कहा है)। आहाहा! **मुनिराज बारम्बार निर्विकल्परूप से चैतन्यनगर में प्रवेश करके अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।** भाई का प्रश्न था न? वह यहाँ आया। **उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में...** आहाहा! द्रव्य पर झुकाव होने से मुनिराज को निर्विकल्पदशा में... आहाहा! उस दशा में **अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप...** चमत्कारिक पर्यायोंरूप, आहाहा! आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता... आहाहा! निष्कलंकता, अतीन्द्रिय आनन्द का खेल उस समय में, अनन्त गुण की व्यक्तता चमत्कारिक प्रगट होती है। अनन्त गुणों की शक्ति। आहा...! **चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है।** मुनिराज तो इसको कहते हैं। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द जिनको खुल गया है। अतीन्द्रिय आनन्द तो समकित में खुला

है, परन्तु मुनि को तो तीन कषाय का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का गंज आ गया है। समयसार पाँचवीं गाथा में कहा। कुन्दकुन्दाचार्य मुनि थे। प्रचुर स्वसंवेदन मेरा वैभव, ऐसा कहते हैं। महाव्रत आदि मेरा वैभव नहीं। प्रचुर स्वसंवेदन मेरा वैभव है। इस वैभव से मैं समयसार कहूँगा। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। हमारा निज वैभव प्रचुर। प्रचुर क्यों लिया? कि समकिती को भी अंश तो आता है और पाँचवें गुणस्थान में उससे विशेष आनन्द आनन्द आता है। मुनि को तो प्रचुर होता है। आहाहा! प्रचुर अर्थात् बहुत। आनन्द की बाढ़ आ जाती है। भरमार आनन्द.. आनन्द.. आनन्द। राग आता है, परन्तु उस राग पर नजर नहीं है। आहा..! ऐसा अनुभव करते हैं। अद्भुत ऋद्धि का अनुभव करते हैं।

उस दशा में, अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यदेव भिन्न-भिन्न प्रकार की चमत्कारिक पर्यायोंरूप तरंगों में एक आश्चर्यकारी आनन्दतरंगों में डोलता है। आहाहा! मुनिपना बापू! अलौकिक है। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का सागर छूटा है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान। आहाहा! वह उछाला मारता है। अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा भगवान, मुनिराज को पर्याय में उसका उछाला (आता है), बाढ़ आती है, आनन्द का उछाला आता है। अतीन्द्रिय आनन्द की। आहा..! **मुनिराज तथा सम्यग्दृष्टि जीव का यह स्वसंवेदन कोई और ही है,...** आहाहा! स्वसंवेदन कोई और जाति का है। **वचनातीत है।**

वहाँ शून्यता नहीं है,... स्वसंवेदन विकल्प से शून्य है, परन्तु स्वभाव से शून्य नहीं है। विकल्प से शून्य हो गया। आहाहा! परन्तु स्वभाव से अशून्य है। स्वभाव के अस्तित्व का दल प्रगट हुआ है। आनन्द के तरंग उठते हैं। आहाहा! **जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** मुनि को तो जागृतरूप से भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना खुल गया है। खजाना खुल गया है, कपाट खुल गया है। आहाहा! राग की एकता में ताला मार दिया था। भगवान की ऋद्धि को राग की एकता में ताला मार दिया था, वह खुल गया। आहाहा! राग की एकता टूटकर ऋद्धि की एकता हो गयी। आहाहा! **जागृतरूप से अलौकिक ऋद्धि का अत्यन्त स्पष्ट वेदन है।** आहाहा! प्रभु! **तू वहाँ जा,** आहाहा! **तुझे चैतन्यदेव के दर्शन होंगे।** यह अन्तिम बात कही।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)